इतिहास-ग्रन्थ-माला नं० ५

आर्य्य महिला-रत्न

तेरह वीर-विदुषी आर्य-महिलाओंके संक्षिप्त जीवन-चरित्र।

लेखक—

अध्यापक जहूरबख्श।

प्रकाशक—

रामलाल वर्म्मा, प्रोप्राइटर—

"वर्म्मन प्रेस" और "आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०,"

३७१, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

माघ, सं० १९८१ वि०

[illegible]

मुद्रक- रामलाल वर्म्मा
वर्म्मन प्रेस।
३७१ अपर चीतपुर रोड कलकत्ता

श्रीयुत पं० मन्नूलालजी सिलाकारी, राजवैद्य,

सागर ।

पूज्यवर,

आपकी आज्ञासेही "आर्य-महिला-रत्न" की रचना हुई है । अतः इसे आपकेही कर-कमलोंमें अर्पण कर प्रसन्नता लाभ करता हूँ । रचना अच्छी है तो, बुरी है तो, अपनोही जान कर स्वीकृत कर इस जनको कृतार्थ कीजिये ।

आपका आज्ञाकारी,

जहूरबख्श ।

उपहार
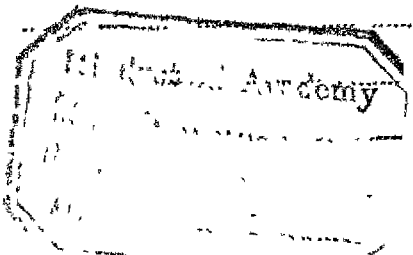
कृतज्ञता-प्रकाश

इसमें सन्देह नहीं, कि श्रीयुत बाबू रामलालजी वर्म्मा उत्साही पुस्तक-प्रकाशक हैं। हमारा ख़याल है, कि वे हिन्दी-संसारके प्रथम और लासानी साहित्य-शिल्पी हैं। इधर कुछ समयसे आपने जैसी सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित की हैं, वैसी कभी साहित्य-संसारके सामने नहीं आयी थीं। उनको देखकर हिन्दी संसार चकित, स्तम्भित और विमोहित हो गया है। हमने देखा है, कि आपकी पुस्तकें देखकर अन्य भाषा-भाषी लोग ठंढी साँस ले लेते हैं। अधिक दूर जानेकी ज़रूरत नहीं, कलकत्तेकीही एक कम्पनीने तो आपकी पुस्तकोंके नामोंतककी नक़ल कर डाली है। यह वर्म्माजीके उद्योगकी पूर्ण सफलताका प्रमाण है। आपकी पुस्तकोंका बहिरंगही नहीं, अन्तरंग भी पूर्णतया सुन्दर होता है। इधर आपकी दो-चार पुस्तकें देखनेसे मालूम हुआ है, कि पाठक अवश्यही उनसे लाभ उठा सकते हैं।

यद्यपि इस पुस्तकमें बाबू साहबकी प्रशंसा करना ठीक नहीं; क्योंकि वे स्वयं इसके प्रकाशक हैं; परन्तु समयानुकूल बात कहनेके लिये सभी स्वतन्त्र हैं। हमें भी प्रसंगानुकूल ये पंक्तियाँ लिखनी पड़ी हैं। 'मुसलिम-महिला-रत्न' हम पाठकोंकी सेवामें भेंट कर चुके हैं; अब 'आर्य-महिला-रत्न' भेंट करते हैं। ये पुस्तकें इस रूपमें बाबू साहबकी सम्मतिके अनुसारही प्रस्तुत हो सकी हैं। अतः उनके सम्बन्धमें ये पंक्तियाँ लिखना, उनकी प्रशंसा करना नहीं, अपनी हार्दिक-कृतज्ञता-प्रकाश करना है और इसके लिये हमें कोई रोक नहीं सकता।

'आर्य-महिला-रत्न'में हमने तेरह वीर-विदुषी देवियोंके चरित्र चित्रित किये हैं। यदि पाठकोंने इन जीवनियोंका आदर किया, इन्हें पसन्द किया, तो हम आगे शीघ्रही उनकी सेवामें इसी प्रकारकी और भी जीवनियाँ उपस्थित करनेकी कोशिश करेंगे।

निवेदक,

जहूरबख्श।

भूमिका

"What will not woman, gentle woman dare—
When strong affection stirs her spirit up."

—Robert Southy.

इस कविताका भाव यह है, कि मृदु-स्वभावा अबलाएँ, प्रबल स्नेह और अनुरागके उत्तेजनमें पड़कर क्या नहीं कर डालतीं? मतलब यह, कि सब कुछ करनेका साहस कर सकती हैं। वास्तवमें बात ठीक है। स्त्री-जाति जहाँ एक ओर मृदुला, कोमलता, अनुराग-प्रियता, स्नेह-प्रवणता और वात्सल्य-भावकी जीती-जागती मूर्त्ति है, वहाँ दूसरी ओर उसमें बड़ी दृढ़ता, बड़ी उत्तेजना, बड़ी साहसिकता और बड़ी उमङ्ग भी भरी रहती है। इसी लिये संसारके इतिहासमें हम स्त्रियोंको सदैवही युगान्तर उपस्थित करते देखते हैं।

परन्तु जन्मसेही मनुष्यके अन्दर सभी स्वाभाविक गुण छिपे रहनेपर भी शिक्षा, अभ्यास और आचरणके द्वारा उसको विकसित करनेकी आवश्यकता होती है। तभी ये गुण अपना प्रकाश दिखला सकते हैं। प्राचीन कालमें आर्य-महिलाएँ अपने इन गुणोंको विकसित करनेका अच्छा अवसर पाती थीं, इसी लिये अपने प्राचीन इतिहासमें नारीत्वकी जैसी उज्ज्वल मूर्त्तियाँ दिखाई देती हैं, वैसी संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हैं। इतिहासके उन्हीं अनुपम नारी-चरित्रोंमेंसे चुने हुए तेरह चरित्र-चित्र इस पुस्तकमें अध्यापक ज़हूरबख़्शने सरल-सरस भाषामें अंकित किये हैं।

थोड़े दिन पहले अध्यापकजीने मुसलिम-महिला-रत्नोंकी जीवनियाँ लिखी थीं। इस बार वे आर्य-महिलाओंके जीवन-चित्र लेकर हमारे सामने आये हैं। मुसलमान होकर भी आपने जिस निष्पक्षभावसे हिन्दू-देवियोंके चरित्र लिखे हैं और स्थान-स्थानपर आपने सहधर्मियोंके कृत्योंकी खरी समालोचना की है, उसके लिये आप पक्षपात-रहित व्यक्तिके सामने धन्यवादके पात्र हैं। हम इस पुस्तकका हिन्दुओंके घर-घरमें प्रचार देखना चाहते हैं।

ईश्वरीप्रसाद शर्मा।

चित्र-सूची

विषय-सूची

प्रिय पाठक !

यदि आप "आर्य-महिला-रत्न" जैसे नये-नये उत्तमोत्तम ऐतिहासिक ग्रन्थ-रत्नोंको पढ़कर आदर्श पुरुषों और रमणियोंकी जीवन-कथाएँ जानना और उनसे लाभ उठाना चाहते हैं, तो

आज ही ॥) आनेका मनी-आर्डर भेज कर

इतिहास-ग्रन्थ-माला

के

स्थाई-ग्राहक बन जाइये—

॥) आना अग्रिम प्रवेश-फी भेजकर स्थायी ग्राहक बननेवालोंको इस सीरीज़में निकलनेवाली सब पुस्तकें बिना डाक-खर्चके घर बैठे मिल जाती हैं।

आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०,

२७१, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

मीनल देवी

भारतवर्षकी जिन देवियोंने अपने सद्गुणोंसे—अपनी असीम योग्यतासे—स्वदेशका गौरव बढ़ाया है, अपनी कीर्त्ति-कौमुदीका प्रकाश किया है, उन्हींमें मीनल देवी भी हो गयी हैं।

मीनल देवी दक्षिण भारतके चन्द्रपुर-नरेश जयकेशीकी कन्या थी। माता-पिताने अपनी कन्याको योग्य बनानेमें कोई बात उठा न रखी थी। उन्होंने उसे लिखने-पढ़नेकी यथोचित शिक्षा दिलायी थी। उसे स्त्री-शिक्षाकी अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ायी जाती थीं, जिससे उसे नारी-जीवनके भावी गुरु-कर्तव्यका भली भाँति बोध हो गया था। राजाने उसे राजनीतिकी भी यथेष्ट शिक्षा दिलायी थी; उसे राज-कार्य्योंका भली-भाँति अनुभव कराया था। नीति-शिक्षासे मनुष्य-जीवन उन्नत होता है, इस विचारसे मीनलदेवीको कथा-ग्रन्थ, धर्म-ग्रन्थ, चाणक्य-नीति, शुक्र-नीति, नीति-शतक आदि ग्रन्थ भी भली भाँति पढ़ाये गये थे। उस समय गान विद्या मनुष्योंके लिये ———— समझी जाती थी, (है भी

वह ऐसी ही आवश्यक) इसलिये मीनलदेवीको भी गान-विद्या-की उत्कृष्ट शिक्षा दी गयी थी। जब वह अपने वीणा-विनिन्दित स्वरसे ईश-स्तवन करती थी, तब सुननेवालोंके हृदय भक्ति-रसमें लीन हो जाते थे—अभूतपूर्व ईश्वरीय सत्ता उन लोगोंके हृदयपर अधिकार कर लेती थी, संसारकी असारताका प्रत्यक्ष चित्र उनकी आँखोंमें झूलने लगता था। फलतः इस सुशिक्षाके कारण मीनल देवी परम गुणवती हो गयी थी। परन्तु वह जैसी गुणवती थी, वैसी रूपवती न थी, यद्यपि उसका रङ्ग-रूप बुरा भी नहीं था।

जब राज-कन्या विवाह योग्य हुई, तब राजाको उसके विवाह-की चिन्ताने आ घेरा। जयकेशीने एक चतुर चित्रकारको बुलाकर मीनल देवीका चित्र तैयार कराया। चित्रकारने अपनी कलाकी पराकाष्ठा कर दिखायी। चित्र परम सुन्दर तैयार हुआ था। चित्र लेकर एक विद्वान् ब्राह्मण वरकी तलाशमें निकले।

उस समय गुजरात प्रदेशके पाटन नगरमें कर्ण नामक एक राजा राज्य करता था। महाभारतके कर्णकी नाईं इस कर्णकी प्रशंसा भी भारत-व्यापिनी हो रही थी। उसकी बुद्धि, विद्या, बल और प्रजावत्सलताकी प्रशंसा चारों ओर फैल रही थी। ब्राह्मण इसे ही उपयुक्त वर समझ, पाटन नगरमें पहुंचे। मीनल देवीके भाग्यसे राजा उसकी चित्र-छवि देखतेही प्रसन्न हो गया। मीनल-देवीके आनन्दनीय सौन्दर्यने उसके हृदयमें स्थान कर लिया। उसने उसके साथ अपना विवाह करनेकी इच्छा, उसी समय प्रकट कर

दी। ब्राह्मण देवताने भी तत्कालही शास्त्रोक्त-विधिसे राजाको फलदान कर दिया।

उसी दिन राजा कर्णने अपने प्रधान-प्रधान सरदारोंको थोड़ी सी सेनाके साथ धूम-धामसे चन्द्रपुरकी ओर भेजा और साथही अपना खड्ग भी भेज दिया। जयकेशीने बड़ी धूम-धामसे बरातका स्वागत किया। नियत तिथिको शुभ लग्नमें खड्गके साथ मीनल देवीका विवाह हुआ और सरदार लोग प्रसन्नतापूर्वक अपनी नूतन महरानीको बिदा कराकर पाटन ले आये। बड़ी खुशीसे रानीका स्वागत किया गया। अनेक उमङ्गोंमें भरा हुआ हृदय लेकर राजाने प्रसन्न-मुखसे महलमें प्रवेश किया। परन्तु एकही क्षणमें उसकी सारी उमङ्गें नष्ट होगयीं—सारी खुशी हवामें मिल गयी, राजाका चित्त बहुत उदास हो गया। हाय! चित्रकारने इनलोगों-के साथ बड़ी भारी शत्रुता की। उसने देवीका जो चित्र तैयार किया था, वह बहुतही सुन्दर था। यथार्थमें मीनल देवीमें उतनी सुन्दरता न थी, इसलिये बेचारीको भविष्यमें अनेकानेक यन्त्रणा-ओंका शिकार होना पड़ा। राजा एकदम महलसे निकल गया। उसका चित्त रानीसे बिल्कुलही टूट गया। उसने रानीकी ओर कभी न देखनेका निश्चयकर लिया! नव-वधू मीनल देवी लज्जाकी मारी चुपचाप बैठी थी, वह इस आकस्मिक घटनाका कुछ भी मतलब न समझ सकी। आह! आदमीका मन कितना भूला हुआ है, वह रूप-मोहमें पड़, मरता रहता है; गुणपर मरना मानों उसने सीखाही नहीं!

* *

इस समय मीनल देवीकी पूर्ण यौवनावस्था थी। अठारहवाँ वर्ष व्यतीत हो रहा था। उसने आशाओं और उमङ्गोंसे भरा हुआ हृदय लेकर पति-गृहमें प्रवेश किया था। यहाँ उसकी समस्त आशाओं-का बलिदान हो रहा था। अपना दुर्भाग्य देख, वह मन-ही-मन रोती थी। पति-वियोगकी ज्वाला अहर्निश जलाया करती थी। न उसे भोजनमें आनन्द आता था, न वस्त्र-भूषणमें चित्त लगता था; न सोनेमें आराम था, न बैठनेमें। रात्रि-दिवस चिन्तामें व्यतीत करती थी। आठो पहर अपने दुर्भाग्यके लिये रोनाही उसकी प्रमुख दिन-चर्या थी। चिन्ता-ज्वाला उसके शरीरको दग्धकर रही थी। यद्यपि मीनल देवीके लिये सब सुखोंकी सामग्री प्रस्तुत थी, तथापि स्त्रीका सुख केवल पतिसे ही है—अन्यान्य सामग्रियाँ उसकी सहायक मात्र हैं। पर जिसके सुखका प्रधान साधनही छिन गया हो, उसके लिये ये तुच्छ सामान व्यर्थही हैं।

मीनलकी दशा इस समय कमल-पुष्पके समान थी। वही सरो-वर है, वही लहराता हुआ जल है, वेही लताएँ हैं, वेही पत्ते हैं; वही आकाश है; परन्तु उसमें कमलका प्रेमी सूर्य नहीं है। वह उसीके वियोग-तापमें झुलसा जाता है। ठीक इसी प्रकार दुर्भाग्य-रूपी रात्रिने मीनल-कमलके प्रेमी पति-सूर्यको ओटमें कर लिया था; फिर यह कमल क्यों न मुरझा जाता? अपनी ऐसी गुणवती, पति-प्राणा पतोहूकी यह अवस्था देख राज-माता भी, बड़ी दुखी रहती थीं। वे अपने पुत्रको भाँति-भाँतिसे समझातीं, रोती-पीटती थीं; पर पाषाण-हृदय पुत्र माताकी बातोंपर ध्यान नहीं देता

था। राज-रानीकी यह दशा सुन, सारी प्रजा राजाकी निन्दा करती थी। मन्त्री और सरदार भी समझाते थे; पर राजाको किसीका कहना भला नहीं लगता था। अन्तमें उस अपमानित और घृणित जीवनसे घबराकर रानीने अपने प्राण त्याग देना ही अच्छा समझा। पिशाच-हृदय कर्णको तब भी दया न आयी। राज-माताने किसी तरह समझा-बुझाकर मीनल देवीको अपने निश्चयसे हटाया।

मीनल देवीने अनेक बार राजासे मिलनेका निश्चय किया; पर उसे सफलता प्राप्त न हुई। वह सदैव यही विचार करती, कि यदि एक बार भी उन्हें पाऊँ, तो फिर उन्हें सदैवके लिये अपना लूँ! दासियोंने भी अनेक बार उपाय किये, पर सफलता प्राप्त न हुई। उलटे इन प्रयत्नोंका फल यह होता था, कि राजाका हृदय और भी कठोर होता जाता था—उसके हृदयमें घृणा और भी ज़ोर पकड़ती जाती थी। परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि जो अपनी आशाका त्याग नहीं करते, जो सतत उद्योग करते हैं, ईश्वर अवश्यही उनकी सहायता करता है और उसकी असीम अनुकम्पासे वे अपने उद्योगको सफल होते देख, अपने जीवनकी सफलताका आनन्द लाभ करते हैं। यथार्थमें ऐसे अविरत परिश्रमसे, जो वस्तु प्राप्त होती है, वह अत्यन्त आदरणीय और उपयोगी होती है।

अस्तु; मीनल देवीको भी अपने उद्योगमें सफलता प्राप्त हुई। एक दिन रात्रिको, रानीकी सखियोंने धोकेसे राजा और रानीका मिलन करा दिया। यद्यपि कर्ण भागना चाहता था, तथापि रानीके सच्चे हृदयकी करुण-प्रार्थना उसके हृदयको गुरुत्वाकर्षणकी नाईं

खींच रही थी। आख़िर राजाको परास्त होनाही पड़ा। उस रात्रिको मीनल देवीने कर्णके हृदयपर पूरा अधिकार कर लिया। रानीके मधुर वार्तालाप, योग्य सेवा तथा सद्गुणोंसे राजा उसके वशमें हो गया। उसे शीघ्रही मालूम हो गया, कि यह देवी यथार्थमें हृदयसे मेरी पूजा करनेवाली है और इसकी अवहेलना और अपमान कर मैंने बड़ी भारी भूल की है। कर्णको अपने इस क्षुद्र व्यवहारपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ, उसे बड़ीही लज्जा आयी। उसने धीरे-धीरे प्रेम-पूर्ण कण्ठसे कहा,–"प्रिये! यद्यपि तुममें रूपकी कमी है; पर गुणोंकी तुम आकर हो, यह मुझे आज मालूम हुआ है। तुमसी सद्गुण-सम्पन्ना तथा शुद्ध-हृदया नारीका अपमान कर मैंने बड़ा पाप किया है। आज ईश्वरने मुझपर बड़ी कृपा की, जो मुझे ऐसा अमूल्य रत्न प्राप्त हुआ। प्रिये! मेरे पूर्व अपराध क्षमा कर दो।" उसी दिनसे मीनल देवी कर्णके हृदयकी देवी हो गयी। यथार्थमें सद्गुणोंका प्रभाव ऐसाही होता है। यदि मनुष्यमें चरित्र-बल है, यदि वह सद्गुण-सम्पन्न है, तो अवश्य ही संसार उसका मान करेगा। और तो क्या, शत्रु भी उसके वशमें हो जायेगा। यदि मनुष्य आचरण-हीन है, उसमें चरित्र-बल नहीं है, तो वह कभी मान नहीं पा सकता। उसके मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

उस दिनकी भेंटका परिणाम यह हुआ, कि जो राजा मीनल देवीकी ओर देखनेका भी ध्यान नहीं करता था, वही अब उसके पाससे हटना भी नहीं चाहता था। रानीके सदाचार, शुद्ध-प्रेम और

कशा श्रौर मीनलदेवी।

। यद्यपि मर्में रूपकी कमी है पर गुणकी तुम श्रानर ६

श्रा

[७

सद्गुणोंका इतना प्रभाव पड़ा, कि अब उसे रानीके पाससे थोड़ी देरके लिये हटना असह्य जान पड़ने लगा। अब राजाका अधिक समय रानीके महलमेंही व्यतीत होता था। पर इससे राज-कार्यमें कभी कोई त्रुटि नहीं होने पायी। समय-समयपर राजा भी उससे राज-कार्यमें सलाह लेता और रानी भी उसे उचित सलाह देकर, उसे यथेष्ट सहायता देती थी। उसकी सम्मतिसे राज्यमें कितनेही बड़े-बड़े और प्रशंसनीय सुधार हुए थे। सारी प्रजा राजाके प्रजा-पालनकी प्रशंसा करती थी, जिसे सुनकर रानी फूले अङ्ग नहीं समाती थी।

जब राजा दरबारसे क्लान्त-शरीर महलमें प्रवेश करता, तब उसकी सारी थकावट भाग जाती थी। रानीको देखतेही उसकी तबीयत खुश हो जाती और उसका मुखमण्डल कमल-पुष्पकी नाईं खिल जाता था। रानी भी अपने प्राणाधारकी यथेष्ट सेवा-कर उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करती थी। जैसे वसंत-कालमें कोयल सप्तम-स्वरसे कूज उठती है, वैसेही मीनलका सुरस गान सुनकर राजा आनन्दसे मतवाला हो जाता था, उसका हृदय-प्रदेश हरा हो जाता था—उसमें वासन्ती वायु बहने लगती थी। धीरे-धीरे सुखका समय और सुहागकी रातें बीतने लगीं।

कुछ काल बाद राज-दम्पतीके प्रेम-परिणाम स्वरूप एक पुत्र-रत्नने रानीकी गोद सुशोभित की। युग्म-प्रेमी अपनी प्रेम-तपस्याका वरदान पाकर अपने नेत्र सफल करने लगे। सुखका समय जाते देर नहीं लगती। हास्य-विनोदके दिन और

आमोद-प्रमोदकी रातें घड़ी पलके समान बीत जाती हैं। देखते-ही-देखते सात वर्षका समय व्यतीत हो गया। रङ्ग-में-भङ्ग होनेका समय आ गया। जिस ईश्वरने इन प्रेमी खिलाड़ियोंका खेल बनाया था, उसीने इसको बन्द करनेकी घण्टी बजा दी। राजा कर्ण रोग-ग्रस्त हुआ। सारे राज्यमें हाहाकार मच गया! रानी बड़े यत्नसे अपने प्राणेशकी सेवा करती थी। उसीके निरीक्षणमें कुशल वैद्य राजाकी चिकित्सा करते थे। चारों ओर राजाकी कुशलके लिये दान-पुण्य होता था। मन्दिरोंमें अनुष्ठान और प्रार्थनाएँ होती थीं। रानी रात-रात भर जागकर राजाकी सेवा करती थी, एक क्षणके लिये भी उसकी आँखें नहीं लगती थीं। ईश्वरसे प्रार्थना करते-करते उसकी आँखोंसे आँसू बह निकलते थे—"हे परमात्मा, पतिही नारी जीवनकी तपस्याका परमोत्कृष्ट परिणाम है, पतिही नारीका पालक और स्वामी है, पतिही नारीका प्राण है, पतिही नारीका जीवन है। पतिही नारीकी अमूल्य निधि है। हे प्रभो! मैं आपसे कुछ नहीं माँगती, माँगती हूँ केवल पतिका जीवन—उन्हीं-की प्राण-रक्षा चाहती हूँ। मैं आपसे यही वरदान चाहती हूँ।"

परन्तु जान पड़ता है, मृत्युपर ईश्वरकी भी सत्ता नहीं है। इतना दान-पुण्य, इतने अनुष्ठान, आँसुओंसे भींगी हुई वे सच्ची प्रार्थनाएँ, वह हाहाकार-युक्त कातर-क्रन्दन, सब व्यर्थ हुआ! ईश्वरके दरबारमें तनिक भी सुनवाई नहीं हुई। राजाकी साँसें पूरी हो गयीं! सबको रोता-बिलखता छोड़कर जीवात्मा न जाने किस अदृश्य लोकको चला गया! सारे राज्यमें हाहाकार मच गया!

राज-माता और मीनल देवीका कातर-क्रन्दन देख, करुणाको भी करुणा आती थी, पत्थर भी शायद पसीज उठे थे; पर मनुष्यकी छाती वज्रकी होती है, वह इन भीषण दुःखोंको सहकर भी जीवित रहता है। इच्छा रहते भी रानी पुत्रका मुख देख सती न हो सकी।

पतिकी अन्त्येष्टि-क्रियासे निवृत्त होतेही, पुत्रके पालन-पोषण एवं राज्य-शासनकी चिन्ताने रानीको व्याकुल कर दिया था। ऐसे शोकके समयमें बड़े-बड़े बुद्धिमान्की भी बुद्धि साथ छोड़ देती है। वे धैर्यकी महत्ता जानकर भी भूल जाते हैं। परन्तु रानीकी शिक्षा और आत्म-बल धन्य था। उसने धैर्य धारणकर क्रमशः अपना शोक कम किया। जो काम बड़े-बड़े विद्या-वागीशों एवम् शूर-वीरों-से भी नहीं होता, वही रानी मीनल देवीने कर दिखाया। राज्यका काम जिस प्रकार पहले चलता था, उसी प्रकार अब भी चलने लगा। मन्त्री लोग रानीकी सम्मतिसेही राज-कार्य करते और क़ानून बनाते थे। समय-समयपर रानी स्वयम् राज-काजका निरीक्षण किया करती थीं। उसके भयके कारण किसी राज-कर्मचारीको प्रजापर अत्याचार करनेका साहस नहीं होता था। रानी जहाँ प्रजाको कष्ट होते देखती, वहीं तत्काल उसे दूर करने-की कोशिश करती थी; क्योंकि वह जानती थी, कि प्रजाका असन्तोषही किसी राज्यके नष्ट होनेका मूल कारण है। प्रजाही राजाका धन है, प्रजाही राजाका अन्नदाता है और प्रजाही राजाकी परम शक्ति है। उसे प्रसन्न रखनाही राज्योन्नतिका कारण है। इसलिये प्रजाको सुख पहुँचानेमें मीनल देवीने कोई बात उठा न

रखी थी। उसके न्याय और प्रजा-वत्सलतासे प्रजा परम सुखी थी और अपनी रानीको माताके समान पूजनीय मानकर वह सदा उसकी मङ्गल-कामना करती थी।

रानीके पुत्रका नाम सिद्धराज था। रानीने पुत्रको भी योग्य बनानेकी पूरी चेष्टा की। अकसर आज कल देखा जाता है, कि लोग अपने पुत्रोंके सुधारकी ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें स्वेच्छानुसार चलने देते हैं। इसका परिणाम यह होता है, कि आगे चलकर वे दुर्गुणी और दुराचारी हो जाते हैं। संसारमें जितने अनिष्टकर कार्य होते हैं, उन्हें पूरा कर दिखाते हैं। उनकी आँखोंमें शीलका नाम नहीं रहता, आचरणसे उद्दण्डता झलकती है। ये ही सपूत आगे चलकर गुरुजनोंपर हाथ साफ़ करते देखे जाते हैं। माता-पिताको जानना चाहिये, कि बच्चोंको आरम्भसेही इस प्रकार स्वाधीनतापूर्वक चलते-फिरते रहने देना, उनके साथ शत्रुता करना है। बच्चोंको केवल खिलाने-पिलानेकाही प्यार काफ़ी है। उनके सुधारके लिये उन्हें ताड़ना देना, नितान्त आवश्यक है और बच्चोंके सुधारके लिये सबसे अच्छी बात तो यह है, कि माता-पिताका आदर्श पहलेही ठीक होना चाहिये। सन्तान उस आदर्शका अनुकरण कर अवश्यही आदर्श होगी। मीनल देवी इस बातको भली भाँति जानती थी। यद्यपि एकमात्र सिद्धराजही उसकी आँखोंका तारा था, वही उसके जीवन और सुखका आधार था, तथापि रानीने कभी उसका अनुचित लाड़-प्यार नहीं किया। वह सदा पुत्रको अपने पास रखती और उसके निरी-

क्षणमेंही गुरु लोग राजकुमारको शिक्षा देते थे। राजकुमारके बाल्य कालसेही रानीने उसके हृदयपर सद्गुणोंका बीजारोपण करना प्रारम्भ किया था। जैसे-जैसे राजकुमारकी अवस्था बढ़ती गयी, वैसे-ही-वैसे रानी शिक्षा-क्रममें परिवर्तन करती गयी। उसने राजकुमारको धर्म एवं नीति-ग्रन्थ पढ़ानेकी ओर विशेष ध्यान दिया; क्योंकि धर्मका आच्छादन कोमल हृदयपर शीघ्रही जम जाता है और नीति अपनी नींव मज़बूत कर लेती है। धर्म और नीतिकी शिक्षाही मनुष्य-जीवनकी सफलताकी कुञ्जी है। निदान अपनी युवावस्थाके आरम्भ-कालमेंही राजकुमार युद्ध-विद्या, राज-नीति, धर्म-नीति आदि विषयोंकी शिक्षा प्राप्तकर प्रवीण होगया। अपनी माताके चरित्रका उसके जीवनपर बड़ा प्रभाव पड़ा था। आगे चलकर उसने इन गुणोंका परिचय भी दिया था।

जब सिद्धराजकी अवस्था राज-काज सम्हालने योग्य हुई, तब मीनल देवी उसे साथ लेकर राज्यमें दौरा करने लगी। इसका मतलब यह था, कि पुत्र अपनी आँखों अपने राज्य एवं प्रजाकी दशा देख, उसपर विचार करे एवं अनुभव प्राप्त करे। रानीने ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगर घूमकर प्रजाकी दशा देखी और पुत्रको दिखायी। जहाँ उसने प्रजाको कष्ट देखा, उसे दूर करनेकी पूर्ण चेष्टा की। प्रजाकी पुकार सुनकर उसका ठीक-ठीक न्याय किया। जहाँ कहीं किसी राज-कर्मचारीकी शिकायत सुनी, कि रानीने स्वयं उसकी तहकीकात कर यथार्थ बातका पता लगाया और जिसका जैसा अपराध पाया, उसे वैसा दण्ड दिया। यही

नहीं, रानीने राज्यकी अच्छी सेवा करनेवाले व्यक्तियोंको पुरस्कार देकर सम्मानित भी किया। रानीके इस दौरेसे प्रजाको और भी कई लाभ हुए। उन्होंने जहाँ कहीं पानीका कष्ट देखा, वहाँ सरोवर, कुएँ आदि बनवा दिये। अनेक नयी-नयी सड़कें और धर्मशालाएँ बनवाकर यात्रियों तथा व्यापारियोंके लिये बड़ा भारी सुभीताकर दिया। रानीके इन कार्यों से प्रजा परम सन्तुष्ट हुई।

रानी मीनल देवी कितनी प्रजावत्सल एवं न्याय-प्रिय थी, यह एक साधारण घटनासे भली भाँति विदित हो जाता है। एक बार रानीने किसी स्थानपर एक जलाशय बनानेका निश्चय किया। जलाशयके लिये जो भूमि निश्चित की गयी थी, उसमें एक वेश्या-का घर भी आ जाता था, परन्तु वह अपना घर त्यागनेको राज़ी न हुई। क़ीमतसे चौगुना रुपया देनेपर भी जब उसने अपना हठ न छोड़ा, तब राज-कर्मचारियोंकी इच्छा हुई, कि मकान बलपूर्वक छीन लिया जाये, पर रानीने कहा,—"क़ानूनसे उस मकानपर उसीका अधिकार है, वह उसे बेचे या न बेचे। बस, तालाबमेंसे उसकी जगह अलग कर दो।" अहा! न्यायका कैसा उज्ज्वल आदर्श है!

निदान कई मासतक देशाटन करके देवी अपनी राजधानीको लौटी और सिद्धराजको राज्य सौंपकर निश्चिन्त हो गयी। थोड़े दिन बाद राज-महिषी और माताके पदको सार्थक करनेवाली यह देवी परलोक-गामिनी हुई।

येगा। देवगिरि अब भी अपने रक्त-बिन्दुओंसे स्वाधीनता देवीकी, बड़े प्रेमसे पूजा करेगा। देवगिरि अब भी अपने प्राणोंकी बाज़ी लगा कर स्वाधीनता-रूपी पताकाको स्वाधीन वायु-मण्डलमें फहरायेगा।

इस समय देवगिरि प्रतापी और वीर नरेश रामदेव * की छत्र-च्छायाके नीचे स्वाधीनताका सुखभोग करता था। वीरमती इन्हीं राजाके प्रधान सेनापतिकी एकमात्र कन्याका नाम था।

रामदेवके भी गौरीदेवी नामकी एक कन्या थी। वह बड़ीही सुन्दरी और गुणवती थी। उसके सौन्दर्यकी सुगन्धि उस समय भारतके वायुमण्डलमें बड़े ज़ोरोंसे उड़ रही थी। जो उस सुगन्धिका स्वाद लेता, वही मस्त हो जाता और उस स्वर्गीय सुमनको पानेके लिये लालायित हो उठता। उसके शत्रुओंने राज-कन्याको पानेका प्रयत्न किया, अनेक राजाओंने देवगिरिपर आक्रमण किये; परन्तु रामदेवका सेनापति व्याघ्रकी नाईं वीर, सच्चा स्वामिभक्त और तेजस्वी मराठा था। उसके प्रताप और वीरत्वके कारण शत्रु मैदानसे इस प्रकार भाग जाते थे, जैसे बाजके सामने-से साधारण पक्षियोंका समूह अथवा मृग-राजके सामनेसे मृग-समूह भाग जाता है। इस प्रकार सेनापतिने अनेक युद्धोंमें विजय पा, शत्रुओंके हृदयमें अपना आतङ्क जमा दिया था। उसका नाम सुनतेही बड़े-बड़े वीरोंकी छाती दहल जाती थी। परन्तु समय सबका होता है। जब मृत्यु आ जाती है, तब साक्षात् मृत्यु भी किसीकी रक्षा नहीं कर सकती। अंततः इसी प्रकार

* इतिहासकारोंने 'रामदेव' नृपतिका नाम 'राजाराम' भी लिखा है।

वीरतापूर्वक युद्ध करते-करते एक दिन सेनापति समराङ्गणमें वीर-गतिको प्राप्त हुआ !

वीरमतीकी माताका देहान्त पहलेही हो चुका था। अब पिता-की मृत्युसे वह निराधार होगयी ! संसार उसके लिये अन्धकार-पूर्ण हो गया। संसारमें अब उसका कोई सगा-सम्बन्धी एवं सहायक न रह गया। परन्तु उदार-चरित, दयालु रामदेवने अपने स्वामि-भक्त सेवक, सेनापतिकी कन्याको संसार-सागरकी तरङ्गोंमें डूबने-उतरानेसे बचा लिया—उसे अपने राज-भवनमें बुला लिया। वहीं राज-कन्याके साथ उसका पालन-पोषण होने लगा। पितृ-हीना बालिका पिताका वियोग शीघ्रही भूल गयी ; क्योंकि राम-देवने अपने वात्सल्यसे बालिकाको कभी पिताकी स्मृतिका अवसर आनेही न दिया। दोनों बालिकाएँ साथ-साथ खेलतीं, साथ-साथ खातीं और साथ-ही-साथ रहती थीं। दोनोंमें सगी-सहो-दराओंके समान स्नेह था। बालिका-द्वयका यह प्रेम देख, रामदेव-की आँखोंको शान्ति मिलती थी। योग्य वय होनेपर राजाने योग्य वरके साथ राज-कन्याका विवाह कर दिया।

इस समय वीरमतीकी अवस्था कुछ कम थी। इसलिये दयालु राजाने अभी उसका विवाह करना ठीक न समझा। परन्तु अपने दरबारके एक सुन्दर नवयुवक, वीर मराठा सरदार कृष्ण-रावके साथ उसकी सगाई कर दी। बालिका यद्यपि अवस्थामें छोटी थी, पर थी समझदार। उसकी धमनियोंमें अपने वीर पिताका वीर-लहू लहरें ले रहा था। उसकी प्रबल इच्छा थी, कि मुझे जो

पति मिले, वह वीर-वर हो—समर-सिंह हो। अपने मनोनुकूल वर पाकर वीरा वीरमती परम प्रसन्न हुई और उसने अपनी मनोवाञ्छा पूर्ण होनेके लिये परमात्माको सहस्रशः धन्यवाद दिये। परन्तु हाय! वीरमती और कृष्णरावका यह विवाह आत्मिक विवाह ही रह गया। उनके शारीरिक विवाह होनेका अवसर भी न आने पाया, कि कराल कालने अपनी कुटिलताका पूर्ण परिचय दिया।

जब रामदेवने अलाउद्दीनको अपना सम्राट् स्वीकार न किया, तब वे मारे क्रोधके जल उठे। वे सोचने लगे, कि 'इस मामूली राजाको इतना गरूर है, उसे अपनी बहादुरीका इतना फ़ख़ है, जिसको सारे हिन्दोस्तानके राजा अपना सर झुकाते हैं, उसीके सामने यह मग़रूर सर उठाये। यह कभी न होगा। ज़रूर उसकी शामत आयी है। अच्छी बात है, अपनी गरूरीका मज़ा भी चख ले। उसकी बहादुरी, उसका ग़रूर अगर चूर-चूर न कर दिया, तो मेरा नाम अलाउद्दीन नहीं।' बस, ऐसेही विचारोंके वशीभूत हो, सम्राट्ने विपुल वीर-वाहिनी ले, देवगिरिपर आक्रमण किया। दक्षिणमें यह उनकी पहली ही लड़ाई थी, देवगिरि राज्यकी सारी प्रजा हाय-हायकर घबरा उठी। पर वीर रामदेव भयभीत होनेवाले आदमियोंमें नहीं थे। उनका दृढ़ विश्वास था, कि 'भगवान् उसीकी सहायता करते हैं, जो स्वयं साहसी और उद्योगी होता है। आलस्य और कायरता घोर पाप है, इसलिये कायर और आलसीके सहायक भगवान् कभी नहीं हो सकते। जो कुछ होना है,

यह तो होगाही ; पर मैं युद्ध करनेसे पीछे क्यों हटूं ? युद्धमें चाहे भलेही मर मिटूँ, पर दुश्मनके आगे कभी सर न झुकाऊँगा। युद्धमें मेरी विजय हो या पराजय; पर अपने कर्त्तव्यसे कभी परा-ङ्मुख न होऊँगा। मरते दमतक स्वाधीनता-देवीकी उपासना करूँगा। यदि समरमें सम्मुख आकर यम भी युद्धकी घोषणा करेंगे, तो उन्हें भी बता दूँगा, कि क्षत्रिय रण करना जानता है—मरना जानता है। रामदेवकी मातृभूमिको पद-दलित कर डालना कोई हँसी-खेल नहीं है।' धन्य वीरवर! धन्य तुम्हारी यह देश-भक्ति और धन्य तुम्हारा यह स्वातन्त्र्य-प्रेम!

बस, राजाने भी अपने वीर महाराष्ट्र-सैनिकोंको तैयार होनेकी आज्ञा दे दी। हर एक सैनिक वीर-मदसे मतवाला हो रहा था। सारी सेना वीर-मदमें झूम-झूमकर खुशी मना रही थी। कोई अपने भालेको सम्हालता था, तो कोई अपनी तलवारपर शान चढ़ाता था। कोई-कोई अपनी मूँछोंपरही ताव दे रहे थे, तो कोई यही कहकर खुश होरहा था, कि 'अब समर-भूमिमें मेरी तलवारका जौहर देखना। यह बहुत दिनसे प्यासी हो रही है। आज शत्रुका गरम-गरम लहू पीकर अपनी प्यास बुझायेगी।' वीर कृष्णराव भी युद्धमें जानेके लिये तैयार हुआ। वह उमङ्गोंमें उछलता हुआ वीरमतीके पास पहुँचा। अपने भावी पतिको युद्धके लिये प्रस्थान करते देख, वीरमतीको परम प्रसन्नता हुई। वह मन्द-स्वरसे बोली,—"क्षत्राणीको बड़ी अभिलाषा रहती है, कि उसका पति रण-जयी हो। वह वीरोंमें अग्रगण्य हो। मैं बड़ी

भाग्यवती हूँ, कि विवाहके पहलेही यह शुभ दिन देख रही हूँ। वीर-वर ! जाओ, अभिमान और प्रसन्नतासे मातृ-भूमिकी रक्षा करने जाओ। जब तुम समरमें विजयी होकर आओगे, तब मैं खुशियाँ मनाऊँगी, देवीको प्रसाद चढ़ाऊँगी और तुम्हें विजय-माल पहिनाकर अपने जीवनको सफल समझूँगी। जाओ, विलम्ब न करो, सेना तुम्हारी राह देखती होगी।" नज़र भर वीरमती को देख, कृष्णरावने वहांसे प्रस्थान किया।

हिन्दू सेना सजकर समर-क्षेत्रकी ओर चली। ज्यों-ज्यों शत्रु-सेना समीप आती जाती थी, त्यों-त्यों उसका उत्साह बढ़ता जाता था—उसकी उमंगें उमड़ती जाती थीं। सैनिक अपने अधि-कारियोंकी आज्ञा पानेके लिये उतावलेसे हो रहे थे। निदान देखते ही-देखते अपने-अपने अधिकारियोंकी आज्ञा पा, दोनों सेनाएँ वज्रके झोंकेके समान आपसमें जूझ पड़ीं। "अल्लाहो अकबर" "दीन-दीन" और "हर-हर"के गगनभेदी स्वरसे आकाश गूँज उठा। सहस्रों भाले और तलवारें हवामें चमक उठीं। तलवारोंकी झना-झन, भालोंकी सपासप और आहतोंके आर्त्तनादसे युद्ध-क्षेत्र गूँज उठा। थोड़ी देर पहले जो स्थल स्वच्छ था, वहीं अब वीभत्स रसका प्रवाह वह रहा था। जहाँ थोड़ी देर पहले जीवित आद-मियोंकी कतारें खड़ी थीं, वहीं अब मृतकोंके ढेर लग रहे थे। जो भूमि थोड़ी देर पहले हरी-भरी थी, वही अब खूनकी कीचड़से लाल हो रही थी! ज्यों-ज्यों मारू बाजा बजता था, त्यों-त्यों सेनाएँ जोशमें आ, और भी घोर युद्ध करती थी। थोड़ी देरके

युद्धमें ही मुसलमानोंको यह मालूम हो गया, कि आज वीरोंसे काम पड़ा है। सम्राट्की सेनाने कई बार आक्रमण किये ; पर उसे सफलता प्राप्त न हुई। किसी भी पक्षकी न तो हार होती थी और न जीत। अलाउद्दीन यह देखकर हैरान हो रहे थे। मातृभूमिकी रक्षाके लिये जान छोड़कर लड़नेवालोंके आगे उनका कुछ भी वश न चलता था।

जब सम्राट् देवगिरिके दुर्गपर अधिकार न कर सके, तब उन्हें बड़ाही दुःख हुआ। अब तक भारतवर्षमें उन्होंने अनेक युद्ध किये थे और उनमें विजय प्राप्त की थी, पर उन्हें ऐसा युद्ध कभी न करना पड़ा था। यादव नरेशकी सेनाकी वीरतासे वे मन-ही-मन प्रसन्न भी हो रहे थे और क्रुद्ध भी। जब उन्होंने देखा, कि इस सेनासे सामने लड़कर विजय पाना कठिन है, तब उन्होंने कूट-नीतिसे काम लेनेका विचार किया। आपने उसी समय सेना-को लौटनेकी आज्ञा दी और चारों ओर यह समाचार फैला दिया, कि अलाउद्दीनको कभी ऐसे युद्धमें लड़ना नहीं पड़ा था। रामदेव-की सेनाकी वीरतासे उन्हें पीछे हटना पड़ा है। इस समय तो वे दिल्ली लौटे जाते हैं, पर शीघ्रही रण-कुशल और वीर सेना लेकर वे देवगिरिको बिना तहस-नहस किये न रहेंगे।

अलाउद्दीनको परास्त हुआ समझ, हिन्दू सेनाकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वह भी अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर विजयका गगन-भेदी शृङ्खनाद करती हुई राजधानीकी ओर लौटी। यहाँ थोड़ी दूर आगे जानेपर सम्राट्ने अपनी सेनाको ठहरा दिया और

अपने सेनापतियोंको दृढ़तापूर्वक मोर्चाबन्दी करनेकी आज्ञा दी। पठान सेना फिरसे वीर-रसमें पगी हुई युद्धके लिये सज्जित होने लगी। शत्रुओंका बल देख, वह मन-ही-मन कुढ़ रही थी। बदले-की प्रतिहिंसासे सभी मुसलमान सैनिक पागलसे हो रहे थे और युद्धके लिये उतावली मचा रहे थे। यहाँ विजयी, पर थकी हुई हिन्दू-सेना निश्चिन्त हो रही थी। वह विजयकी खुशीमें उत्सव मनानेकी तैयारी कर रही थी। सभीने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये थे। युद्ध-सामग्रियाँ चारों ओर अस्त-व्यस्त हो रही थीं। जब राज-धानीमें अलाउद्दीनकी मोर्चेबन्दीके समाचार पहुंचे, तब तो हिन्दू सेनाकी सारी खुशी हवामें उड़ गयी। बेचारोंको फिरसे तैयार होनेका प्रबन्ध करना पड़ा।

रामदेव भी बड़ी चिन्तामें पड़े। उन्होंने अपने मन्त्रियों और सेनापतियोंको बुलाकर पूछा, 'अब क्या करना चाहिये?' अला-उद्दीनकी कपट वार्तासे सभी मन-ही-मन जल-भुन रहे थे। वे मन-ही-मन खीझते और दाँत कटकटाते थे। राजाका प्रश्न सुनतेही सबने यही सलाह दी, कि 'महाराज! हम लोग शत्रुओंसे किसी बातमें कम नहीं हैं। हमारी सलाह तो यही है, कि एकदम दुश्मन-पर धावा किया जाये और उसे ऐसी मार लगायी जाये, कि वह एकदम दिल्लीमेंही जाकर दम ले और कभी इस ओर आनेका भी विचार न करे। राजा साहबने भी अपने सामन्तोंकी यह सम्मति स्वीकृत कर ली और सेनाको तैयार होनेकी आज्ञा दी। परन्तु इसी समय अन्धकारका भाई, विश्वासघातका अवतार, आस्तीनका साँप

कृष्णराव बोल उठा—"महाराज ! अभी सेना तैयार करानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वह युद्धकी हारी-थाकी है, उसे आराम करने दीजिये। मैंने एक ऐसी युक्ति सोची है, कि जिससे शत्रु थोड़ेही परिश्रमसे परास्त किया जा सकता है।" कृष्णरावका कथन सुनतेही सभी उपस्थित सभ्योंके चेहरोंपर एकबारगी आशाकी चपला चमक उठी और सब उसकी ओर उत्कण्ठा सहित देखने लगे।

राजाने आशा और प्रेम-भरे स्वरमें पूछा,—"वह कौन सी युक्ति है, कृष्णराव !"

कृष्णराव नम्रतापूर्वक बोला,—"महाराज ! एक गुप्तचर शत्रुकी सेनामें चुपचाप घुस जाये और उसका सारा भेद, जैसे उसके पास कितनी सेना है, कितनी सहायताके लिये आ रही है या आ सकती है, रसद-पानीका प्रबन्ध कैसा है, शत्रु कब और कहांसे आक्रमण करना चाहता है, आदि सब बातोंका पता लगा आये ; फिर हम लोग उनपर विचार कर अपना कार्य-क्रम निश्चित कर अवश्यही शत्रुको मार भगायेंगे।"

राजा बोले,—"कृष्णराव ! तुम्हारी सम्मति बिल्कुल ठीक है। पर यह तो बताओ, कि बिल्लीके गलेमें कौन चूहा घण्टी बाँधनेका साहस करेगा ?—भेड़ियेकी मांदमें जानेकी हिम्मत कौन सी भेड़ करेगी ? मृत्युके आगे अपना शीस लेकर कौन सा वीर जायेगा ? यह कार्य बड़ेही चतुर और चालाक आदमीका है। ऐसा आदमी कहाँ मिल सकता है ?"

यह सुनतेही कृष्णरावका मुख-मण्डल आनन्दसे कमल पुष्पकी नाईं खिल उठा। आशाकी ज्योति उसके मुख-मण्डलपर अपनी क्षीण-प्रभासे जगमगा उठी। उसने मानों सफलता देवीका प्रत्यक्ष दर्शन सा पालिया। मधुर मुस्कान करते हुए वह बोला,—"महाराज! देशके लिये एक आदमीका मिल जाना कठिन नहीं है। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं अपने प्राण अभी अग्नि-अर्पण तक कर सकता हूँ। शत्रुका भेद लेना तो कृष्णरावके लिये छोटीसी बात है। बस, आपकी आज्ञा मिलने भरकी देर है।"

रामदेव केवल वीरही नहीं थे—सहृदय भी थे। वे अपने सरदारको मृत्यु-मुखमें भेजनेके लिये राज़ी न हुए। परन्तु कृष्णरावके शब्द, पास बैठे हुए सामन्तोंपर पूरा असर कर गये थे। कृष्णरावके विशेष आग्रह और सामन्तोंकी सम्मतिसे अन्तमें राजाने उसका प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया और उसे अनुमति दे दी। हाय! यह सम्मति और अनुमतिही देवगिरिके लिये वज्रका काम कर गयी!

पाठक! आपके हृदयमें कदाचित् यह प्रश्न ज़ोरसे चक्कर लगा रहा होगा, कि कृष्णराव, अलाउद्दीनकी सेनाका भेद लेनेके लिये क्यों इतनी आतुरता और आग्रह दिखला रहा था? वह स्वयंही मृत्यु-मुखमें जानेके लिये क्यों तैयार हो रहा था? क्या देश-भक्तिके पवित्र भावोंसे प्रेरित होकर?—नहीं, हरगिज़ नहीं! कृष्णरावका रूप जितना सुन्दर था—उसका हृदय उतनाही कलुषित था। वह जितना कुलीन था—उसका हृदय उतनाही नीच और पतित था।

वह जितना बड़ा सामन्त था—उसका हृदय उतनाही क्षुद्र तथा स्वार्थी था। उसके हृदयमें बहुत दिनोंसे यह लालसा वास कर रही थी, कि वह देवगिरिका राज-मुकुट अपने शीसपर धारण करे और इसलिये वह ऐसेही अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था; फिर चाहे वह राज-मुकुट खरीदनेके लिये, उसे स्वाधीनता बेचनी पड़े, चाहे देशकी हत्या करनी पड़े और चाहे जितने पाप करने पड़ें। अलाउद्दीनका यह आक्रमण उसे अपने स्वार्थ-साधनके लिये अत्युत्तम अवसर जान पड़ा। वह छिपे-छिपे सम्राट्के सेनापतिकी सेवामें उपस्थित हुआ और अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उसने सेनापतिको देवगिरिपर विजय करा देनेका वचन दिया। उसीकी सम्मतिसे सम्राट्की सेना हटकर अन्यत्र चली गयी थी। यह भेद देवगिरिमें सिवाय कृष्णरावके और किसीको विदित न था। पर उस समय किसीने भी कृष्णरावके इस आग्रह और अनुनयका यथार्थ कारण ढूँढ़नेकी कोशिश न की; उल्टे उसे वहाँ जानेमें मदद दी। ठीक है, विनाश-कालमें आदमीकी मति मारी जाती है। कृष्णराव खुशी-खुशी शत्रु-सेनामें जानेके लिये घर आकर तैयारी करने लगा।

अपने भावी पतिका यह साहस देख, वीरमतीके हृदयमें प्रसन्नताकी लहरें हिलोरें लेने लगीं। परन्तु थोड़ीही देरमें वहाँ दुःख और अविश्वासने अपना साम्राज्य आ जमाया। उस समय देवगिरिमें अकेली वीरमती ही थी, जिसे कृष्णरावपर आप-ही-आप सन्देह उत्पन्न हो गया था। वह सती प्रत्यक्ष देवगिरिका संहार

देख रही थी। थोड़ीही देरमें वह मनको सम्हाल आप-ही-आप कहने लगी,—"अरे पापी मन! जिस वीर पुरुषके हाथ तुम बिक चुके हो, उसीपर यह सन्देह,—यह घोर पाप! क्या तुम अविश्वासकी लहरोंमें एक आर्य-बालाका अधःपात कर दोगे? आर्य-बालाओंका अपने पतिपर सन्देह करना अपने आर्यत्वमें धब्बा लगाना है। शान्त होओ। अब कभी ऐसे कुविचार न करना।" परन्तु बहुत कुछ कोशिश करनेपर भी उसका मन क़ाबूमें न आया। वह उथल-पुथल मचाताही रहा। यथार्थमें मन ठीक तार-घरके समान है। जिस प्रकार तार एक जगहसे भेजा जाता है और वह इच्छित स्थानपर अवश्यही पहुँचता है, उसी प्रकार मनमें जहाँ लहर उठती है, वहाँ वह अपने प्रेमीके हृदयपर जाकर अपना कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य ही दिखलाती है।

अतः वीरमती एकान्तमें कृष्णरावसे जाकर बोली,—"आर्य! मैंने सुना है, कि आप शत्रुओंका भेद लेने जा रहे हैं। अच्छी बात है। जाइये, अपने स्वामीका, अपने देशका प्रिय कार्य कर, अपने कर्त्तव्यका पालन कीजिये। सच्चे क्षत्रियोंका यही कर्त्तव्य है, कि वे देशकी सेवाके लिये अपना सिर भी सहर्ष समर्पित कर दें। मुझे आज परम सन्तोष है—परम प्रसन्नता है, कि ऐसे कर्त्तव्यशाली पुरुषने मेरे हृदयपर अधिकार जमाया है। मैं वीर-धर्मको अच्छी तरह जानती हूँ। इसलिये आपके कर्त्तव्य-पथमें कंटक बिछाना नहीं चाहती; परन्तु आपसे कुछ प्रार्थना अवश्यही करती हूँ। यद्यपि वेद-धर्मसे हमारा पाणिग्रहण-संस्कार नहीं हुआ है, पर

वीरमती और कृष्णाराव।

, पर समय में

हमारे मन एक दूसरेपर अपना दृढ़ अधिकार कर चुके हैं। इस लिये आप मेरे पूज्य पतिदेव हो चुके हैं। मेरा अब यह परम धर्म है, कि आपके सुखमें सुख मनाऊँ और दुःखमें दुखी होकर आपकी सहगामिनी बनूँ। आप वीर-धर्मका पालन करने जा रहे हैं; शत्रु-सेना यमराजके समान है। ऐसी दशामें मैं कैसे घरमें बैठी रह सकती हूँ? कृपाकर आप दासीको भी सेवाकी आज्ञा देकर साथ ले चलिये।"

कृष्णरावने हँसकर कहा,—"प्रिये! तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु समरमें स्त्रियोंका जाना ठीक नहीं। लोग मुझे न जाने क्या कहेंगे? फिर एक बात यह भी है, कि मैं भी तुम्हारे प्रेममें पड़-कर सम्भवतः अपने कर्तव्यका पालन भली भाँति न कर सकूँगा।"

यह सुनकर वीरमतीका चेहरा क्रोधसे तमतमा उठा। वीरता-का प्रकाश उसके मुख-मण्डलको ज्योतिर्मय करने लगा। सत्य है, वीर स्त्रियाँ कभी अपनी वीरताकी निन्दा नहीं सुन सकतीं। वह ओजस्वी स्वरसे बोली,—"लोग मेरे साथ चलनेसे आपकी निन्दा करेंगे—यह आश्चर्यकी बात है! क्या स्त्रीका समर-भूमिमें जाना निन्दाकी बात है? क्या स्त्रीका समरमें शस्त्र-क्रीड़ा करना कोई पाप है? क्या अपने देशके लिये, क्या अपने पतिकी सहा-यताके लिये, स्त्रीका रणाङ्गनमें अपना खून बहाना निन्दाकी बात है? इस वीर-धर्मको संसारमें कब और किसने निन्दित कहा है? क्या स्त्रियाँ अपने शत्रुओंके दाँत खट्टे करना नहीं जानतीं? क्या ऐसा करना स्त्रियोंके लिये अपमानकी बात है? फिर, मैं आपके साथ

स्त्री-वेशमें नहीं, पुरुष-वेशमें चलूँगी। कोई जान भी न सकेगा, कि आपके साथ स्त्री है। मैं वीरता-पूर्वक आपका साथ दूँगी। आप जहाँ जायेंगे, वहाँ छायाके समान आपके साथ रहूँगी और आपकी सेवा करूँगी। आर्य स्त्रियाँ यह कभी नहीं देख सकतीं, कि उनका आराध्य-देव कालके गालमें चला जाये और वे चुपचाप घरमें बैठी रहें। यदि मेरे साथ जानेसे आपकी निन्दा होगी, तो क्या घरमें बैठे रहनेसे मेरी प्रशंसा होगी? क्षत्रिय स्त्रियाँ मेरा नाम लेकर क्या कहेंगी, कि वीरमतीका पति शत्रुदलमें अपना सिर हथेली-पर लेकर गया था और वह कायरकी नाईं घरमें बैठी रही थी। संसारमें मेरा नाम क्यों थोड़ीसी बातके लिये कलङ्कित हो? मुझे साथ चलनेकी आपको आज्ञा देनी ही होगी। आप कहते हैं, कि मेरे साथसे, मेरे प्रेममें पड़कर, आप अपना कर्त्तव्य-पालन न कर सकेंगे। प्राणेश! जिस प्रेममें पड़कर मनुष्य कर्त्तव्य-पथसे च्युत हो जाये, वह प्रेम प्रेमही नहीं है—वह मोह है। शुद्ध प्रेम कभी कर्त्तव्यसे विमुख करना नहीं जानता। दशरथ और राममें कितना प्रेम था; परन्तु इससे दशरथ अपने प्रतिज्ञा-पालनसे विरत नहीं हो सके। राम और सीतामें सत्य स्नेह था। यह सत्य स्नेह उन युग्म प्रेमियोंको कर्तव्य-पालनसे विमुख नहीं कर सका। शैव्या और सत्यवादी हरिश्चन्द्रमें आदर्श स्नेहका साम्राज्य व्याप्त था; परन्तु वह स्नेह शैव्यासे आध गज़ कफ़न माँगनेमें हरिश्चन्द्रको कर्त्तव्य-च्युत न कर सका। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनसे सिद्ध होता है, कि प्रेम कभी कर्त्तव्यका अवरोधक नहीं

हो सकता ; परन्तु वह प्रेम शुद्ध और सात्विक होना चाहिये। आप इस मोहावरणको हटा डालिये, फिर देखिये, संसारकी कोई भी शक्ति आपको कर्त्तव्य-पालनसे विमुख नहीं कर सकती। इसलिये मेरा मस्तक ऊँचा करनेके लिये—मातृ-भूमिकी सेवाके लिये—आप मुझे अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये।" अहा! वीरता, देश-भक्ति और पति-भक्तिका कैसा अपूर्व आदर्श है! संसारमें आज ऐसे कितने आदर्श मिलेंगे? आज हमारे भारतवर्षको वीरमती जैसी सहस्रों वीर-बालाओंकी आवश्यकता है, जो देशके लिये अपने पतियों और पुत्रोंके साथ बलिदान होनेको तैयार हों तथा उन्हें बलिदानके लिये प्रोत्साहन दें। जबतक हमारी देवियाँ मोहका त्याग न करेंगी, तबतक भारतवर्ष कैसे अपना उद्धार कर सकेगा? यह सोचनेकी बात है। आज दिन अली-भाइयोंकी वृद्धा माता और महात्मा गान्धीजीकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरी बाई आदि देवियोंने देशके सामने जो अपूर्व आदर्श उपस्थित किया है, उससे हमारे देशका गौरव बहुतही बढ़ गया है। यदि हमारे देशकी देवियाँ सुशिक्षिता होतीं, यदि वे देशका महत्व समझती होतीं, तो आज हमारे सामने ऐसे अगणित आदर्श उपस्थित होते और देशकी परिस्थिति कुछ और ही हो गयी होती। अस्तु।

वीरमतीकी वीरदर्पसे भरी हुई बातें सुनकर कृष्णराव घबरा गया। परन्तु फिर अपने मनको सम्हालकर बोला,—"प्रिये! तुम इतनी व्याकुल क्यों होती हो? अभी मैं युद्ध करने थोड़ेही जाता हूँ। चतुराईसे, कपटसे, शत्रुका भेद लेकर मैं शीघ्रही लौट आऊँगा।"

यह सुनकर वीरमती और भी अधीर हो उठी। वह व्यंगसे बोली,—"ठीक है, मुझे न ले चलिये। मेरे साथ जानेसे आपकी निन्दा होगी। परन्तु क्या आप गुप्तचर हैं? यह आपने क्षत्रिय-धर्म पालन करनेका अच्छा नियम निकाला है। आप मुसलमानोंको कपटी, बेईमान, छली और अन्यायी कहते हैं, पर संसारमें आपका यह काम किस दृष्टिसे देखा जायेगा? प्राणेश! यह मार्ग छोड़िये, व्यर्थ क्षत्रियके नाममें कलङ्कका टीका न लगाइये। क्या आप नहीं जानते, कि हाथमें हथियार ले, समर-क्षेत्रमें शत्रुका प्रत्यक्ष सामना करना ही क्षत्रियका परम धर्म कहा जाता है। मरना और मारनाही पवित्र धर्म है। छल-कपट करना क्षत्रियके लिये लज्जाकी बात है। देश और धर्मके लिये आजतक अगणित क्षत्रियोंने प्रत्यक्ष समरमें शत्रुओंका संहार किया है और वे हँसते-हँसते वीर-धर्मका पालन करते हुए स्वर्ग सिधारे हैं। आपके सामने उनके आदर्श हैं। यह निन्दनीय मार्ग छोड़, आप भी उन्हींका अनुसरण कीजिये।"

कृष्णरावने उत्तर दिया,—"अपने सहस्रों भाइयोंका नाशकर अपनी जाति और देशकी हानि करनेकी अपेक्षा, मैं सरल युक्तिसे शत्रुओंका संहार करना अधिक अच्छा समझता हूं। तुम घरमेंही रहो। मैं शीघ्र आऊँगा।" इतना कहकर कृष्णराव घरसे बाहर निकला और घोड़ेपर सवार हो, शत्रु-शिविरकी ओर चला।

कृष्णरावका यह व्यवहार एवं अपनी प्रार्थना व्यर्थ होती देख, वीरमतीके हृदयपर कड़ी चोट लगी। उसके हृदयमें अविश्वासने और भी गहरी जड़ जमा ली। पति कालके कराल गालमें आ रहा है,

एवं वह कपटसे शत्रुका भेद लेनेकी दुर्नीतिका अनुसरण कर रहा है—ये सब बातें विचारकर उसका हृदय व्याकुल हो उठा, परन्तु वह इतनेसे ही घरमें बैठनेवाली देवी न थी। उसके हृदयमें साहसका वास था—उसके शरीरमें वीर-रक्तका संचार था। वह बाधाओंको भावी यशो-मन्दिरका प्रवेश द्वार समझती थी। उसने अपने वीर-धर्मको समझ लिया। उसने अपने कर्त्तव्यका निश्चय कर लिया। वह भी पुरुष-वेश धारणकर, अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो, घोड़ेपर बैठ, कृष्णरावके पीछे चल दी। आगे-आगे कृष्णराव था—पीछे-पीछे वीरमती जा रही थी। पर बीचमें फ़ासला ज़ियादः होनेसे दोनों एक दूसरेको देख न पाते थे। निर्भय कृष्णराव आनन्दपूर्वक आगे बढ़ता जाता था। उसे यह ख़बर भी न थी, कि मेरी भावी सहचरी मेरा पीछा कर रही है। उसे यह ख़बर न थी, कि मेरे आनन्दकी ये लहरें थोड़ी देरके पश्चात्‌ही सदैवके लिये निरानन्द शान्ति-सागरमें विलीन हो जायेंगी। लगभग दो घण्टेके बाद युग्म प्रेमी एक घने वनमें प्रविष्ट हुए। वीरमतीने एकाएक एक झाड़ीमें दो आदमियोंके वार्त्तालापकी ध्वनि सुनी। वह खड़ी हो, चुपचाप सुनने लगी। उसे स्पष्ट सुन पड़ा,—

"शाबास! आप आ गये? मैं आपकीही राह देख रहा था। मैं सोच रहा था, कि आप आ सकेंगे या नहीं।"

"क्यों? आपने यह विचार कैसे कर लिया? कृष्णराव झूठ बोलना नहीं जानता! जब मैं आपसे प्रतिज्ञा कर चुका था, तब क्यों न आर्यकी सेवामें हाज़िर होता? मैं अभी-अभी रामदेवके

आँखोंमें धूल झोंककर आया हूँ। मैंने बातोंका ऐसा जाल फैलाया, और सब लोग उसमें ऐसे फँस गये, जैसे पक्षि-समूह बहेलियेके जालमें फंस जाता है। बेचारा रामदेव सोच रहा होगा, कि कृष्णराव मेरे हितके लिये यहाँ आया है। पर उसे यह मालूमही नहीं है, कि मैं शीघ्रही उसकी गद्दीपर बैठ राज-सुखका भोग करूँगा।”

“बेशक! जब आप हमारे शाहन्शाहकी इस तरह मदद करेंगे, तब आपकी मुराद ज़रूरही पूरी होगी। आप ज़रूरही देवगिरिके सूबेदार मुक़र्रर किये जायेंगे।”

मुसलमानोंका क्रीतदास बननेके लिये—केवल सूबेदारी पानेके लोभसे, मातृभूमिका सर्वनाश करनेके लिये—कृष्णराव इतना आतुर हो रहा है, यह देख, वीरमतीके आश्चर्य और परितापकी सीमा न रही। कृष्णरावकी बातें सुनकर उसका शरीर एड़ीसे चोटीतक जल उठा। पञ्जिनके बायलरके समान उसका हृदय कृष्णरावकी ओरसे फट गया। कृष्णरावपर उसे जो अविश्वास हो रहा था, उसे उसने इतने भयङ्कर रूपमें प्रत्यक्ष देख लिया। देशकी दुर्दशाका चित्र उसकी आँखोंके आगे झूल गया। वह बड़े सङ्कटमें पड़ी। एक ओर पिताके समान पूज्य एवं स्नेही राजा और स्वर्गसे भी महान्, सुख-दुःखमें सहायता करनेवाली, अन्न और जल देकर पोषण करनेवाली प्यारी जन्मभूमि एवं दूसरी ओर परमेश्वरके समान पूजनीय पति-देवता हैं। अब वह करे तो क्या करे? किस ओर झुके? यदि पतिकी ओर झुकती है, तो राजा और जन्मभूमिके

साथ घोर विश्वासघात होता है—घोर कृतघ्नता होती है। सहस्रों निरपराध देशबन्धुओंकी हत्या होती है। सहस्रों बहनोंका आर्त-नाद सुनना पड़ेगा। धर्मकी बरबादी देखनी पड़ेगी और यदि जन्मभूमिका पक्ष लेती हूँ, तो पति-द्रोहका पाप लगता है। अन्तमें उसे पतिसे कहीं महान्, माननीया और पूज्या जन्मभूमिही समझ पड़ी और उसने अपने कर्त्तव्यका निश्चय कर लिया। उसने दोनों हाथ जोड़ परमेश्वरसे प्रार्थना की,—"हे परम पिता! मेरा अपराध क्षमा करना। धर्म-सङ्कटमें पड़कर मैं केवल अपना कर्त्तव्य-पालन कर रही हूँ।"

क्रोधके मारे वह कृष्णरावपर दाँत कटकटाने लगी। लहूकी प्यासी, बिजलीके समान तेज़ और प्रकाशमान तलवार उसने मज़-बूतीसे हाथमें पकड़ ली और कृष्णरावपर वायुके झोंकेके समान झपटी और "रे कुल-कलङ्क! रे अधम! अपनी देश-द्रोहिताका पुरस्कार ले! अपनी विश्वासघातकताका दण्ड भोग! तू इसी दण्डके योग्य है"—यह कह, उसने एकदम वह लपलपाती हुई तलवार उसके हृदयमें भोंक दी। यह भीषण घटना देख, उस मुसल्मान सैनिकने उसी दम वहाँसे अपनी सीधी राह पकड़ी। कृष्णराव आनन्दसागरमें गोते लगा रहा था, वह ख़ुशी-ख़ुशी बातें करनेमें लीन हो रहा था। उसे कुछ ख़बरही नहीं थी, कि मेरे जीवनकी घड़ियाँ अन्त हो चुकी हैं। अपनी प्यारीकीही वायु-समान तलवारकी फटकारसे मेरे जीवन-प्रदीपका अन्त होनेवाला है। वह सम्हलने भी न पाया था, कि तलवार अपना वार कर

गयी और पापी कृष्णराव, जिस जननीसे द्रोह करता था, उसीकी गोदमें अनन्त निद्रामें लेट गया। जब उसने आँखें खोलीं और ऊपरकी ओर देखा, तब उसे अपनी प्यारी सामने दिखी। वह क्षीण स्वरसे बोला,—"कौन? वीरमती, प्रिये!........"

वीरमती बीचमेंही बात काटकर बोली,—"बस! बस! चुप रहो। मैंने तुम्हारा क्षत्रियत्व अपनी आँखों देख लिया। तुम्हारी देश-भक्तिका, तुम्हारे विश्वासका प्रत्यक्ष परिचय पालिया। हाय! तुम्हारे इस पापानलसे मेरा हृदय जला जाता है। मुझे "प्रिये" कहनेका अब तुम्हें अधिकार नहीं। तुम्हारी प्रिया तो दासता है। तुम्हारी प्राणेश्वरी तो विश्वासघातकता है। तुम्हारी हृदय वल्लभा तो अब द्रोहिता है। तुम्हारी प्रिय-पत्नी तो अब सूबेदारी है। हाय, विधाता! ऐसे देश-द्रोहीका मेरे हृदयपर क्यों अधिकार हुआ? प्रभो! इनके पापोंको, इनके अपराधोंको क्षमा करो।"

यद्यपि कृष्णरावको प्राणान्तकारी घाव लगा था, यद्यपि दस-पन्द्रह मिनटोंमेंही उसकी जीवन-यवनिकाका पतन होनेवाला था, तथापि अभी उसमें बोलने और विचारनेकी शक्ति थी। वह फिर क्षीण स्वरमें बोला,—"प्रिये! मैं निस्सन्देह पापी हूँ। निस्सन्देह मैंने स्वामिद्रोह और देशद्रोह किया है। निस्सन्देह मेरा अपराध क्षमाके योग्य नहीं है; पर प्रिये! अपनी सहृदयतासे मेरा अपराध क्षमा करो। मैं अनुतापसे जला जा रहा हूँ। अपनी सहायताकी अमृतवर्षासे यह अग्नि शान्त करो। प्रभो! मैं सेवामें आ रहा हूँ। मुझे भयङ्कर-से भयङ्कर दण्ड दो। मैं इसीयोग्य हूँ।"

वीरमतीकी आँखोंसे अश्रु-धारा बह रही थी। वह प्रेम-पूरित कण्ठसे बोली,—"नाथ! मैं अच्छी तरहसे जानती हूँ, कि मैंने क्या किया है। मैंने केवल अपने धर्मका पालनमात्र किया है। आप कुमार्गमें जा रहे थे, आप भीषण पाप-कर्ममें रत हो रहे थे, इस कण्टक-पथसे आपको बचानेके लिये केवल यही रास्ता रह गया था। मैं आपकी मन-वचनसे अर्द्धाङ्गिनी हो चुकी हूँ। मैं आपको कैसे अन्धकारमें जाने देती? अपने पतिकी रक्षा करना, उसे कुपथसे सुपथपर लाना, प्रत्येक आर्य-रमणीका कर्त्तव्य है—मैंने केवल उसीका पालन किया है। आप मेरे पूज्य हैं, मैंने आपपर यह हृदय-निछावरकर दिया है। आप यह न समझिये, कि मैं आपके बिना इस सूने संसारमें सानन्द अपने दिन बिताऊँगी। अब मैं यहाँ किसके लिये रहूँगी? मुझे भी साथही लेते चलिये। मैं ईश्वरसे आपके अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना करूँगी। आपकी सेवाकर आपके अशान्त और अनुतप्त हृदयको शान्त और शीतल करूँगी।"

पाठक! वह शत्रु-संहारिणी तलवार फिर म्यानमें नहीं गयी। जो अपने प्रेमीकी रक्षाके लिये आयी थी—उसीने अपने हाथों अपने प्रेमीका हनन किया और जिस तलवारसे वह अपनी और अपने प्रेमीकी रक्षा करती, उसीसे उसने अपने प्रेमीका और अपना संहार किया। वह चमकती हुई पैनी तलवार—वह ख़ून भरी तलवार—देखते-ही-देखते वीरमतीके हृदयमें घुस गयी। जब वह गिरी, तब उसका हृदय कृष्णरावके वक्षस्थलपर था। कृष्ण-